REVIEW OF RESEARCH

ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 1 | OCTOBER – 2017

# भारतीय संस्कृती और सिनेमा

डॉ. सरिता संजीव इंगळे
संगीत विभाग प्रमुख,
स्व. छगनलाल मुलजीभाई कढी कला
महाविद्यालय, परतवाडा जि. अमरावती.

**प्रस्तावना :**

भारतीय सिनेमा और समाज के समानान्तर परस्पर प्रभाओ का मिलन जनता पर हमेशा पडता रहा है। सिनेमा और समाज दोनो बाते एकदुसरे से जुडी हुयी है। 90 के दशक तक फिल्मे सामाजिक, धार्मिक , आर्थीक, शैक्षणिक, राजकिय, क्रांतीकारी बदलो के सकारात्मक संदेश देती रही है परंतु आज फिल्मो मे व्यवसायिकता बढने के कारण कॉमेडी या प्यार के नाम पर अश्लिलता का चित्रण होता है । यह फिल्मे भारतीय भावनीक तथा संस्कृती के आईने को तोड रही है जिससे खोखले समाज का निर्माण हो रहा है। इसका अर्थ यह नही की सभी फिल्मे ऐसी है, कुछकुछ फिल्मे आज भी सामाजिक हित की दृष्टि से चित्रीत हो रही है । हम इसमे दंगल फिल्म का उदाहरण दे सकते है, जिसमे कठिण संघर्षो के बाद उस उद्देश पर विजय प्राप्त करना है। तो ऐसे योग्य परीवर्तनों के निर्माण का बदलाव हम फिल्मों द्वारा जनता पर निश्चीत कर सकते है।

5000 सालो से अधिक प्राचीनमय भारतीय संस्कृती के रितीरिवाज, भाषाएँ, रंग–रुप, परंपराएँ, धार्मीक प्रणालीया सभी विभीन्न होते हुये भी एक दूसरे से सभ्यता के साथ जुडी हुयी है। यह सर्वांगीणता, वि”ालता, उदारता और सहिष्णुता की दृष्टि से अन्य संस्कृतीयों की अपेक्षा अधिक संस्कारात्मक और सकारात्मक है। इसी संस्कृती को अधोरेखीत करते हुये भारतीय फिल्म आरंभ से ही भारतीय समाजका आईना बनी हुई है। इ. स. 1913 मे श्री. ढुंडीराज फालके अर्थात दादासाहेब फालके इन्होंने भारतीय सिनेमा विकास करते हुये प्रथम स्वदेश निर्मीत फिचर फिल्प ”राजा हरिश्चंद्र” यह मुक फिल्म बनायी। 14 मार्च 1931 मे इराणी के ”इम्पीरियर मुव्हीटोन कंपनी” ने ”आलमआरा” बोलपट की निर्मीती की, जिसमे 6 गाने थे और इसप्रकार सिनेमा संगीत का सफर शुरु हुआ । देखते ही देखते आश्चर्य की बात यह बताने लायक है की उस समय 1932 मे जो ”इंद्रसभा” फिल्म बनायी गयी उसमे कुल मिलाके 71 गाने फिल्माये गये।

शारंगदेव कृत ”संगीत रत्नाकर” ग्रंथ मे ”गीतम् वादयम् तथा नृत्य त्रयम् संगीत मुच्चते” इस वाक्य से हम यह जान सकते है की भारतीय संगीत का प्रारंभ वैदिक काल से भी पूर्व का है। संगीत को भारतीय संस्कृती का आत्मा माना गया है। भारतीय संगीत के मुख्य दो प्रथाये है। 1) कर्नाटक संगीत और 2) हिंदुस्थानी संगीत।

संस्कृती की धरोहर पर ही फिल्म की कथाओं का ढाचा बनाया जाता है, इस वजह से तत्कालीन फिल्मे समाज की उस समय घटित हर एक विधा पर रहती है। जैसे समय की हिसाब से समाज मे नारी की भूमिका केवल घर के कामकाज और पारिवारीक निस्वार्थ सेवा अर्थात गृहस्थी मानी जाती थी। तब इसी का आधार लेते हुए इस प्रकारकी कथाएँ फिल्मायी गयी । फिल्मो मे साधारणतः सामाजिक जिवन की ममता, भावनात्मक बहन, प्यारी पत्नी या प्यारी प्रेयसी अर्थात समाज के विर्भीन्न तौर तरीके दिखायी देते है। इसलिये गरीबो से लेकर अमीरो तक, शिक्षीत से लेकर अशिक्षीतो तक सभी को सिनेमा प्रिय रहा है। 1931 मे तत्कालीन वातावरण के अनुसार नारी जिवन की विडंबना को लेकर, अछूत कन्या, आदमी, 1935 मे देवदास तो आगे चलकर बालविवाह, पर्दाप्रथा, अशिक्षा ऐसे विषयो को लेते हुये सामाजिक प्रथाओ पर सिनेमा चित्रीत होने लगा। 1947 के बाद इसमे थोडा परिवर्तन आया, फिल्मो की व्यवसायिकता बढी। फिर कभी दाम्पत्य जीवन, कभी आदर्श नारी तो कभी अत्याचार पिडीत व्यक्तीमत्व था। लेकीन यह सब परंपराओं से ही जुडा था। फिल्म इतिहास मे शुरुआत मे मुक फिल्मे, फिर आवाजों की चलचित्रे बनी उसके बाद धार्मिक फिल्मे, ऐतिहासीक फिल्मे, सामाजिक फिल्मे जनता की ही मांग थी। आगे चलकर रोमांटिक फिल्मो का दौर आया परंतु यह सभी फिल्मे कुछ न कुछ सामाजिक संदेश देते थे। रुढीजात के अनुसार छुआछूत, सामाजिक भेदभाव, जातीभेद इनके खिलाफ भरी संदेशो के

फिल्मे बनी जैसे राजेश खन्ना की फिल्म "कटी पतंग" जिसमे एक दलित महिला से (विधवा विवाह) जुडी कहानी है, जो सामाजिक वैचारिक बंड पुकारती है।

## फिल्म की कथाओ मे सामाजिक परिवर्तनः–

समाज परिवर्तन के साथ साथ नारीओं का घर से बाहर निकलना, नोकरी करना, कभी देवी के रुप में तो कभी सौंदर्य साधन के रुप मे दर्शाना इसप्रकार नारी के बहुआयामी रुप चित्रीत होने लगे। साधारणतः 30 वी दशक को भारतीय सिनेमा मे सामाजिक अन्यायों के खिलाफ आवाज उठती दिखायी देती है जैसे व्ही. शांताराम की दुनिया न माने, आदमी, दामले और फतेहलाल की संत तुकाराम, महबूब की बाते, एक ही रास्ता, औरत आदी फिल्मे बनी। 40 के दशक मे द्वितीय विश्वयुध्द चल रहा था। तो उस आधार पर फिल्मे बनी, जिसमे भारत को स्वतंत्र होते हुये दिखाया गया, जैसे व्ही शांताराम की "डॉ कोटनीस" की अमर कहानी, महबूब की रोटी, उदयशंकर की कल्पना, पुकार, वासन की चंद्रलेखा, राजकपूर की बरसात, आग इसप्रकार। 1955 मे सत्यजीत रे की पाथेर पांचाली। लेकीन बाद मे नववास्तववाद सामने आया जो बिमलरॉय की दो बिघा जमीन, देवदास, मधुमती और राजकपूर की बुटपॉलीश, श्री 420, मदर इंडिया, व्ही.शांताराम की "दो ऑखे बारह हाथ, झनक झनक पायल बाजे"। 50 वी दशक मे गुरुदत्त की फिल्म प्यासा, कागज के फूल इत्यादी प्रदर्शित हुये। 50–60 की दशक मे ही नारी जागृत पर फिल्मे चित्रीत हुयी।

## संगीत मे परिवर्तनः–

60 की दशक मे आसिफ की "मुगल–ए–आजम" फिल्म जिसमे रोमॅंटिक संगीत और अच्छी पटकथा थी जो बॉक्स ऑफीस पे नया रिकॉर्ड बनायी। यह सभी फिल्मे तत्कालीन भारतीय समाज के चित्रण पर आधारीत थी। 60–70 का दशक, संगीत का स्वर्णीम समय माना गया है, । जिसमे उत्कृष्ट शायरो, गीतकारो और संगीतकारो का योगदान रहा है। समाज के चित्रण पर बनी सभी फिल्मे व्यक्ती को अपनी ही जिंदगी, अपनी ही बात, अपनी ही खुद की जिंदगी की कहानी लगने लगी। इस समय बहोत सी फिल्मे इस आधारपर बनी जैसे राजकपूर की फिल्म जिस देश मे गंगा बहती है, संगम दिलीपकुमार की गंगा–जमुना, गुरुदत्त की साहिब बीवी और गुलाम, देवआनंद की गाईड, विमलरॉय की बंदिनी, मनोजकुमार की उपकार और ऐसी बहोत सी फिल्मे बनी।

## महिलाओं के जागरुकता–

80 के दशक मे बुध्दीजीवी दर्षको का एक नया वर्ग निर्माण हुवा जिसमे विविध ज्वलंत प्रश्नों को समेटा गया था। महिलाओं को सन्मानीत करते हुये फिल्मे बनने लगी। इसी समय ॲक्शन और बदले की भावना से भरी फिल्मे चित्रीत होने लगी। यह भारतीय समाज का आईना ही थी। साधारणतः 70,80,90 के ही दशक मे नारी केवल चौकी चुल्हा नही तो वह परिवारीक आर्थीक सहचारीणी बनी। जो फिल्मो मे अंकीत की गयी जैसे फिल्म "झनक झनक पायल बाजे, गाईड, उपकार, आनंद, अभिमान, मिली" इस प्रकार । अभी 90 की दशक मे आर्थीक वैश्वीकरण हो गया था इस समय विदेशी कंपनीयो की भागीदारी भारतीय सिनेमा से जुडी। समाज के सामाजिक, धार्मिक , आर्थीक, शैक्षणिक, राजकिय बदलों पर सिनेमा चित्रीत होने लगा था, जैसे दामिनी, मम्मी, फायर, फिजा लिव्ह इन रिलेशनशिप यह फिल्म सामाजिक बदलो की थी।

## जनता का दृष्टीकोनः–

भारतीय सिनेमा और समाज के समानान्तर परस्पर प्रभाओं का मिलन जनता पर हमेशा पडता रहा है। सिनेमा और समाज दोनो बाते एक दुसरे से जुडी हुयी है। परंतु हम यह भी कह सकते है की फिल्मों मे कुछ बाते काल्पनीक भी होती रही है। फिल्मों की बाते युवा पिढीपर कुछ सकारात्मक, तो कुछ नकारात्मक प्रभाव डालती है। सकारात्मक परिवर्तनो से क्रांतीकारी बदलाव हुए है तो नकारात्मक परिवर्तनो से समाज का नुकसान भी हुआ है। सकारात्मक लिया जाए तो हमे फिल्मो से बहोत कुछ ज्ञान मिल जाता है। परंतु कुछ आधुनिक फिल्मचित्रण की सवाल के जवाब हम नही ढुंढ सकते, उनके गाने का अर्थ बच्चों युवा के रास्ते शायद बदल न दे ऐसे डर रहे है।

नकारात्मक दृष्टिकोन रखते हुये चोर– उचक्के फिल्मी अंदाज मे डकैती कर रहे है। विदेशीकरण हो रहा है ।वैसे देखा जाये तो भारतीय संस्कृती और सिनेमा दोनो ने काफी तरक्की कर ली है, परंतु फिल्मी व्यवसायीकता बढने से दर्शको की संवेदनशीलता घटती जा रही है, फिल्म उदयोग माफिया की शिकस्त मे घिर रहा है। वास्तविकता से दूर जा रहा है। जैसे आज की फिल्मो मे नायक नायिका के पिछे धन के लिये भागता है और उसे यह एक ही दृष्टिक्षेप मे मिल जाता है। या फिर दुबला पतला नायक 10 गुंडो को एक ही झटके मे मार देता है, कुछ फिल्मों मे हिरो चोर, मवाली रहता है । तो यह सभी बाते नकारात्मक दृष्टिकोन को बढावा देती है, जब कि फिल्मो मे बुराई पर अच्छाई का विजय दिखायी देना चाहीये।

**फिल्मो की काल्पनिकता :–** फिल्मो के चित्रण अधिकतर कल्पानाओं मे विहार कर रही है, जैसे उदाहरण के तौर पर –

1. नायक नायिका के साथ लफंगेपन का बर्ताव करे तो नायिका इम्प्रेस होती है।

2. 5 मिनट की बातचीत से प्यार हो जाता है।
3. नायक या नायीका प्यार मे धोखा खाये तो तुरंत आत्महत्या करती है।
4. लडकीयों के शरीर पर अश्लिल जोक्स बनाये तो वह खुद ही खुष हो जाती है । क्या इन बातो को हम समाज का आईना बता सकते है? नही। हम केवल इतना बताना चाहते है की यह फिल्म की व्यवसायिकता, बाजारुपन का सामाजिक डर का सिलसिला बंद हो जाये।

आधुनिक फिल्म निर्माता और निर्देशक उस पृष्ठभूमी से नही आये है, जिस पृष्ठभूमी से पहले के निर्माता निर्देशक आते थे। आज तो सधन , अंग्रेजी स्कुलों मे पढे और शहरी विभागो के निवासी है। जिन्होने कभी ग्रामीण इलाको को न देखा, कभी गरीबी, लाचारी , हिंसात्मक दृष्टी नही देखी है, तो वह उसके पारिचायक कैसे हो सकते है? वह तो बॉलीवुड मे हॉलीवुड का तडका लगाते रहते है। हम उनकी आलोचना यहा नही कर रहे है, परंतु समाज निर्माण के वो अधिकारी होने के कारण समाजहित के सकारात्मक संदेशे फिल्मद्वारा देने की बिनती हम कर रहे है। 20 वी सदी मे विश्व के मनोरंजन के परिदृश्य मे सिनेमा ने क्रांती लायी है क्योंकी इसके पहले नाटक, नौटंकी व त्यौहारो के अवसर पर मेलो मे यह बाते होती थी। यह ऐसी बात है की सिनेमा किसी भी वर्ग, जाति या धर्म के लोग एकसाथ देख सकते है। या फिर पूरा परिवार एकसाथ देख सकता है, अर्थात एकता, समता, ममता, यह संमभावो का संदेश फिल्मो से मिलता रहा है। परंतु आधुनिक फिल्मो मे यह बाते घटती जा रही है। अभी पूरा परिवार एकसाथ सिनेमा देख नही सकते न वो देखनेलायक होता है तो क्युं ना हम ऐसे फिल्मो का निर्माण करे जो समाजहित, देशहित मे हो। सिनेमा की माध्यम से सकारात्मक जनता निर्माण हो और मानो ऐसा लगने लगे की फिर से प्राचीन सभ्यसंस्कृती पलटकर आयी हो। इतनी जबरदस्त शक्ती, ताकद सिनेमा मे हम पा सकते है। इसलिए हम कहेंगे की संस्कृती और सिनेमा यह दोनो परस्परपूरक है।

*निष्कर्ष :–*

1. आम तौर पर फिल्मे डायरेक्ट या इनडायरेक्ट सामाजिक संदेशो को छुते हुये चित्रीत होनी चाहिये।
2. ऐसी फिल्मे बनने की जरुरत है जो लोगो मे सकारात्मकता तथा देशभक्ती की भावना का निर्माण करे।
3. सिनेमा जगत ने तय करना है की समाज के उत्थान, प्रगती मे उसकी क्या भूमिका है।
4. सुसंस्कृती का निर्माण सिनेमा जगत का मुख्य उद्देश रहना है ।

सिनेमा का माध्यम संस्कृती मे बदलाव की आधारपर ही बदलता है सिनेमा बदलते सामाजिक ढांचे और भावनाओं को दर्शाता है। यही सिनेमा जिसका योगदान राष्ट्रनिर्माण मे भी रहा है और यह राष्ट्रनिर्माण के सकारात्मक दृष्टिकोन से भरा रहेगा यह आ"ाा हम करते है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची**

1. rs://rudreshmishra.wordpres.com.
2. Newspaper- Navbharat times- 18 April 2016
3. Google weblight.com
4. https://hi.m.wikipedia.org.
5. आचार्य श्रीवास्तव गिरीशचंद्र, संगीत कला विहार, एप्रिल 2013, पृष्ठ 21
6. फिल्म विशेषांक, नई दुनिया 1988

**डॉ. सरिता संजीव इंगळे**
**संगीत विभाग प्रमुख, स्व. छगनलाल मुलजीभाई कढी कला महाविद्यालय, परतवाडा जि. अमरावती.**